प्रवासी हिन्दी कथा साहित्य में सांस्कृतिक संघर्ष

सोनिया राठी
एम.ए.(स्वर्ण पदक विजेता), यु.जी.सी.नेट, एम.फिल.
पीएच.डी.(शोधार्थी), जैन विश्वविद्यालय, बेंगलोर

Received: May 05, 2018 Accepted: June 22, 2018

ABSTRACT *आजादी के बाद भारतीयों का अधिकतर प्रवास विकसित देशों की ओर हुआ। विकसित देशों का सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश भारत से पूर्णतया भिन्न है। इसी भिन्नता के कारण प्रवासी भारतीयों के जीवन में संघर्ष उत्पन्न हुआ। वे मानसिक रूप से इस दोहरी जिन्दगी को अपनाने में असमर्थ रहे। दोहरे जीवन से उत्पन्न समस्याओं ने उनके अन्दर कुंठा निराशा जैसे भावों को जगा दिया। जब कोई व्यक्ति विदेश पहुंचता है वहां उसे सब बदला–बदला सा नजर आता है। भारत के जीवन और विदेश के जीवन में अन्तर के कारण वह असमंजस की स्थिति में पहुंच जाता है। वह दोनों जगहों की तुलना करने लग जाता है। यहीं से उसका सांस्कृतिक संघर्ष शुरू होता है। अंग्रेजी में इसे 'कल्चरल शॉक' कहते हैं।*

प्रस्तावना

संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने, खाने–पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है। संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज के दीर्घ काल तक अपनायी गयी पद्धतियों का परिणाम होता है। 'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा की धातु 'कृ' (करना) से बना है। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं 'प्रकृति' (मूल स्थिति), 'संस्कृति' (परिष्कृत स्थिति) और 'विकृति' (अवनति स्थिति)। जब 'प्रकृत' या कच्चा माल परिष्कृत किया जाता है तो यह संस्कृत हो जाता है और जब यह बिगड़ जाता है तो 'विकृत' हो जाता है। अंग्रेजी में संस्कृति के लिये 'कल्चर' शब्द प्रयोग किया जाता है जो लैटिन भाषा के 'कल्ट या कल्टस' से लिया गया है, जिसका अर्थ है जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना और पूजा करना। संक्षेप में, किसी वस्तु को यहां तक संस्कारित और परिष्कृत करना कि इसका अंतिम उत्पाद हमारी प्रशंसा और सम्मान प्राप्त कर सके। यह ठीक उसी तरह है जैसे संस्कृत भाषा का शब्द 'संस्कृति'। संस्कृति का शब्दार्थ है– उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी है। यह बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थिति को निरन्तर सुधारता और उन्नत करता रहता है। ऐसी प्रत्येक जीवन–पद्धति, रीति–रिवाज रहन–सहन आचार–विचार नवीन अनुसन्धान और आविष्कार, जिससे मनुष्य पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊँचा उठता है तथा सभ्य बनता है, सभ्यता और संस्कृति का अंग है। सभ्यता से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है जबकि संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है। मनुष्य केवल भौतिक परिस्थितियों में सुधार करके ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह भोजन से ही नहीं जीता, शरीर के साथ मन और आत्मा भी है। भौतिक उन्नति से शरीर की भूख मिट सकती है, किन्तु इसके बावजूद मन और आत्मा तो अतृप्त ही बने रहते हैं। इन्हें सन्तुष्ट करने के लिए मनुष्य अपना जो विकास और उन्नति करता है, उसे संस्कृति कहते हैं। मनुष्य की जिज्ञासा का परिणाम धर्म और दर्शन होते हैं। सौन्दर्य की खोज करते हुए वह संगीत, साहित्य, मूर्ति, चित्र और वास्तु आदि अनेक कलाओं को उन्नत करता है। सुखपूर्वक निवास के लिए सामाजिक और राजनीतिक संगठनों का निर्माण करता है। इस प्रकार मानसिक क्षेत्र में उन्नति की सूचक उसकी प्रत्येक सम्यक् कृति संस्कृति का अंग बनती है। इनमें प्रधान रूप से धर्म, दर्शन, सभी ज्ञान–विज्ञानों और कलाओं, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं और प्रथाओं का समावेश होता है। विदेश में संस्कृति की भिन्नता के कारण प्रवासी भारतीयों को वहां तालमेल स्थापित करने में कठिनाई आती है। भारत में जैसी उनकी दिनचर्या थी उसी को वह विदेश में भी अपने जीवन का अंग बनाए रखना चाहते हैं। किन्तु धीरे–धीरे उनको आस–पास का वातावरण प्रभावित करने लग जाता है और उनकी जीवन–शैली में बदलाव आने लग जाते हैं। यह बदलाव इतना धीरे होता है कि विदेशी संस्कृति को अपनाने में उनको समय लग जाता है। विदेशी जीवन उनके लिए बिलकुल अलग होता है। किंतु उनके बच्चे उस परिवेश में शिक्षा ग्रहण करते हैं। विदेशों में भारतीय संस्कृति उन्हें दूसरों से अलग करती है क्योंकि उनका भोजन, पहनावा, धार्मिक आचार–विचार, भाषा, मान्यताएं और रीति–रिवाज उन्हें विदेशी समाज में एक अलग पहचान देते हैं। अगर किसी प्रवासी भारतीय के पास उसका भारतीय रिश्तेदार अपने बच्चे को भेजना चाहता है तब कोई कठिनाई नहीं होती पर विदेश में पले बढ़े बच्चों को यदि किसी कारण वश भारतीय रिश्तेदार के पास छोड़ना पड़े तब वे भारतीय उसके लिए तैयार नहीं होते। उनको ऐसा लगता है कि वे

जिस स्वतंत्र माहौल में पले है। उसका असर उनके बच्चों पर भी पड़ने लगेगा।

'अपराधबोध का प्रेत' कहानी में 'सुरभि' को पिछले पाँच साल से कैंसर था। अब वह दो वर्ष से बिस्तर से उठ नहीं पा रही थी। डॉक्टरों की भाषा में 'सुरभि' को 'बोन मैटास्टेटिस' नामक भयानक बीमारी थी। 'सुरभि' अपने बच्चों को लिए अधिक चिंतित थी कि उसके मरने के बाद उनकी देखभाल कौन करेगा। वह इस विषय पर अपनी माँ से बात करती है परन्तु उसकी माँ 'सुरभि' के बच्चों के अलग माहौल में पले होने के कारण उन्हें अपने पास रखने से इंकार कर देती है।

"उन्होंने मेरी उम्मीद की किश्ती को तैरने से पहले ही डुबा दिया। कहती है, देख भई गुडडी, तेरे बच्चे अलग तरह से पले हैं। उनको हम अपने पास नहीं रख सकते। अपनी मरती हुई बेटी का झूठा दिल रखने को भी उन्होंने यह नहीं कहा कि मेरी मौत के बाद मेरे बच्चों को संभाल लेगी।"[1]

विदेशों में बच्चों को बचपन से ही आत्म निर्भर बनने की शिक्षा दी जाती है। मगर प्रवासी भारतीय अपने बच्चों को स्वतंत्रता नहीं देना चाहते। उनके हर काम में वे दखल देते हैं। यह उनका अपने बच्चों के साथ मोह के कारण है। मगर बच्चे को पाश्चात्य संस्कृति के साथ सामंजस्य बनाने के लिए स्वतंत्रता चाहिए। दिव्या माथुर की कहानी 'तुम नहीं सुधरोगी, रूना' में रूना की सहेली गीता उसे समझाते हुए कहती है कि उसे अपने बेटे के जीवन में दखल नहीं देना चाहिए। उसका बेटा उसे छोड़ कर चला गया है। आधी रात को रूना अपनी सहेली गीता को फोन करके अपने पास बुलाना चाहती है। गीता इस बात से परेशान है कि रूना हमेशा अपने बेटे को लेकर चिंतित रहती है। गीता उसे समझाती है कि उसका बेटा बड़ा हो चुका है, रूना को उसकी इतनी चिंता करने की जरूरत नहीं।

"तो तुम उसके सीने पर सदा मूंग दलती रहोगी। यही फर्क है भारतीय और विदेषी माता–पिता में। यहां वे बच्चों को जल्दी से जल्दी पांव पर खड़ा कर देना चाहते हैं ताकि वे जीवन का भरपूर आनंद ले सकें और हम बच्चों की शादी के बाद भी उनके जीवन में दखलअंदाजी करने से बाज नहीं आते।"[2]

आदिकाल से ही मनुष्य दुख–तकलीफों का सामना करता आ रहा है। सुख उसके लिए श्रण–भंगुर थे। इन दुखों से मुक्ति पाने के लिए और स्वयं को आश्वासन देने के लिए वह अपने से बड़ी शक्तियों का पुजारी बन गया। प्राकृतिक शक्तियाँ उसके लिए देवी–देवता बन गए और उसने उनकी पूजा आरम्भ कर दी। धीरे–धीरे उसे प्रकृति के पीछे ईश्वर की झलक दिखाई देने लगी और इस तरह मनुष्य ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करने लगा। धीरे–धीरे उसने ईश्वर के अनेक नाम रख लिए। ईश्वर के इस अस्तित्व में उसने अपने जीवन के सभी लक्ष्यों को ढूंढ़ना शुरू कर दिया। उसे बहुत सारे कर्तव्यों का अहसास होना शुरू हो गया। बस इन्हीं कर्तव्यों की पूर्ति का नाम ही धर्म पड़ गया। धर्म में कुछ मानवीय विचार, आदर्श, रीति–रिवाज और संस्थाएं भी शामिल हैं। परमात्मा की भक्ति, आराधना और मनुष्य जाति की सेवा जैसे कर्त्तव्य मिलकर धर्म कहलाते हैं। शाब्दिक तौर पर धर्म का अर्थ है किसी को आश्रय देना। धर्म किसी नियम को थामता, बनाए रखता या कायम रखता है। वेदों में धर्म का अर्थ सांसारिक विधि कहा गया है। महाभारत, गीता, धर्मशास्त्रों या पुराणों में 'धर्म' के अर्थ हैं–कानून, कर्त्तव्य, सच्चाई, हक, अच्छे गुण, किसी की ओर हमारा कर्त्तव्य विशेष और अधिकार आदि। पश्चिमी समाज में प्रधानता ईसाई धर्म की है। जबकि भारत से गए प्रवासी अलग–अलग धर्मों के हैं। इनकी दूसरी पीढ़ी कहीं ईसाई धर्म की ओर आकर्षित न हो जाए इसलिए ये अपने–अपने धर्म से जुड़े रहना चाहते है। प्रवासी भारतीय पश्चिमी समाज में वास करते हुए अपनी मातृभूमि से जुड़ा रहना चाहते हैं। इसके लिए वे धर्म का सहारा लेते हैं। भारत में होने वाली शादी वेद–मंत्रों व गाजे–बाजे के साथ बड़ी धूम–धाम से की जाती है। विवाह के अवसर पर पूरा परिवार सम्मिलित होता है।

पश्चिमी समाज की स्वच्छंद जिन्दगी भी प्रवासी भारतीयों को विस्मित करती है। लिविंग रिलेशन वहां आम बात है। चौदह–पंद्रह वर्ष की आयु में ही बच्चे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। वहां का समाज इसे मान्यता भी देता है। माता पिता का उनके जीवन में कोई हस्तक्षेप नहीं होता बार–बार जीवन साथी बदलना उनके जीवन का चलन है। 'कथा सत्यनारायण की' कहानी में सुशीला अपनी बेटी को लेकर परेशान थी। जब से सुशीला के पति गुजरे थे तब से उसकी बेटी रूपा किसी का कहना नहीं मानती थी। वह अपना जीवन अपने ढंग से जीना चाहती थी। सुशीला सोचती थी कि उसके दिए संस्कारों में कहां कमी रह गई जो रूपा को वह तहजीब न सीखा सकी। रूपा अपनी मनमानी करती और उसे रोकने वाला कोई नहीं।

"जब सुशीला रूपा की शादी पीटर से भी करने को मान गई तो सुना कि वह रूपा की सहेली के साथ घूम रहा था। रूपा कौन सी कम थी। वह उस सहेली के ब्वाय फ्रेंड के साथ घूमने लगी। घूमने क्या लगी, उसके साथ पेरिस में छुट्टियां भी मना आई। सुशीला की पड़ोसन नईमा, जिसे जहान भर की खबर रहती है, बता रही थी कि रूपा सलीम के साथ बालीवुड डांस क्लब में रोज जाती है।"[3]

चाहे मजबूरी वश या परिवार के व समाज के दबाव के कारण भारतीय इतनी आसानी से वैवाहिक बंधनों से मुक्त नहीं हो पाते। भारतीय अभिभावक अपने बच्चों को सही रास्ते पर लाने के लिए मार–पीट

भी करते हैं। किन्तु प्रवासी भारतीय ऐसा नहीं कर पाते क्योंकि पश्चिमी समाज में इसे कानूनन अपराध माना जाता है। विवाह के अवसर पर बच्चे अपने माता–पिता को मात्र पूछ ले, यह भी प्रवासी भारतीयों के लिए अच्छे सौभाग्य से कम नहीं। प्रवासी भारतीय अपने अरमानों को मन में दबा कर अपने बच्चों का साथ देने को विवश हो जाते हैं। 'जोगिया सितारा' की रमा अपनी बेटी की शादी के अवसर पर विवश थी। वह इसी बात में खुश थी कि उसकी बेटी शादी कर रही थी और वह उस शादी में शामिल हो सकी। अन्यथा उसकी बेटी को कोई फर्क नहीं पड़ता अगर वह न भी शामिल होती। रमा की बेटी भारतीय रस्मों की पूरी जानकारी नहीं जानती थी।

"रमण ने अपनी समझ से जयमाला की रस्म की। मगर उसे न माला के बारे में जानकारी थी न रस्म के बारे में। हवाईयन छोटी सी फूलों की मालाएं गले में डाले रहे सारे वक्त। डान्स के वक्त मालाएं डोलते न अमेरिकी लग रहे थे न भारतीय।"[4]

विश्व के सभी देशों में उनकी जलवायु के अनुसार उनका खान–पान व रहन–सहन भी भिन्न होता हैं। ठंडे प्रदेशों में मूल निवासी ठंड से बचने के लिए बचपन से ही गर्म कपड़े पहनते है। उनका रहन–सहन ठंडे वातावरण के लिए ढ़ल चुका है। प्रवासी भारतीयों को उस परिवेश में ढ़लने में समय लगता है।

'अभिशप्त' कहानी में जब पढ़ने के बाद भी रजनीकांत को नौकरी नहीं मिली। तब उसके पिताजी ने लंदन से आई रजनीकांत की दूर की बहन से रजनीकांत को लंदन ले जाने की बात की। रजनीकांत लंदन आ गया दो दिन उसकी आवभगत हुई। फिर वह अपनी दूर की बहन के घर मुंडू बनकर रह गया। एक दिन उसकी बहन और जीजा उसे एक विवाह की दावत में ले गए। वहां उसे निशा नामक लड़की के माता पिता ने पसंद कर लिया। निशा उससे तीन वर्ष बड़ी थी। वीज़ा खत्म होने वाला था। निशा के माता पिता को चिंता थी कि कहीं उनकी बेटी किसी गोरे से शादी न कर ले। निशा और रजनीकांत की शादी हो गई। रजनीकांत की दिनचर्या लंदन आकर बदल गई।

"लंदन में रात को नहाने की प्रथा का पहले पहल रजनीकांत मजाक उड़ाया करता था। परंतु धीरे–धीरे उसे भी समझ में आने लगा कि गीले बालों के साथ सुबह–सुबह बाहर निकलना बीमारी को खुली दावत देना है, इसलिए अब वह रात को ही नहाता है, और हां नहाने के बाद पूजा अवश्य करता है। यही उसने आज भी किया। फिर आदत के अनुसार उसने बीयर का डिब्बा खोला और ठंडी बीयर को अपने शरीर में उतारने लगा।"[5]

सभी देशों के खाद्य पदार्थ व दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाली वस्तुओं के ब्रांड नेम अलग–अलग होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जिस ब्रांड नेम की वस्तुएं भारत में उपलब्ध हों उसी नाम से वह विदेशों में भी सामान्य स्टोर पर उपलब्ध हों। इसलिए विदेश गमन करते समय हमें उस देश के वस्तुओं के ब्रांड नेम व खाद्य पदार्थों के बारे में जानकारी होना आवश्यक है। लेकिन अमेरिका, ब्रिटेन जैसे बड़े देशों में भारतीय सामानों व मसालों की दुकानें आसानी से मिल जाती हैं, केवल उन दुकानों की जानकारी होना आवश्यक है। ठंडा प्रदेश होने के कारण पश्चिमी देशों में मांसाहार का अधिक प्रचलन हैं। भारत में भौगोलिक कारण के अलावा सांस्कृतिक कारणों से शाकाहारी भोजन अधिक प्रचलित रहा है। ब्राह्मण समाज व नारियां अधिकांशतः शाकाहारी भोजन करते हैं। इस कारण विदेश यात्रा करते समय ये भारतीय अपने साथ शाकाहारी भोजन लेकर जाते थे। लेकिन जिन भारतीयों को नौकरी के कारण अधिक समय तक विदेश में रहना पड़ता है। खान–पान को लेकर उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। प्रवासी भारतीयों को एक ओर समस्या गाय का मांस खाने में आती है। भारतीय संस्कारों में गाय को माता की संज्ञा दी गई है। लेकिन यूरोपीय देशों में गाय का मांस खाना आम बात हो गई है। कुछ प्रवासी भारतीय हालात के साथ स्वयं को ढ़ाल कर मांसाहार का सेवन करने लग जाते हैं। 'टेलिफोन लाइने' का अवतार सिंह अकेला होने पर अपने स्कूल से जुड़ी बातों को याद करता है। उसे याद आता है कि

"स्कूली जीवन में भी मीट कहां खाता था। घर में मां और पिता दोनों ही शाकाहारी थे। अवतार की बहन निम्मो भी शाकाहारी है। अवतार ने खुद भी लंदन आकर ही मीट खाना शुरू किया था। हालांकि जानता था कि इन्सान को मीट नहीं खाना चाहिए। बहुत देर तक शाकाहार पर लेक्चर दे सकता था। लेकिन फिर भी दोस्तों के साथ बैठ कर मीट खा लेता था। हां एक बात तय थी कि न तो वह गाय का मीट खाता था और न ही सुअर का गोश्त। ले देकर चिकन और मछली ही खा पाता था।"[6]

भारतीय जब उत्कृष्ट कमाई और उत्कृष्ट जीवन स्तर के लिए विदेश पहुंचता है तो संघर्ष द्वारा धीरे–धीरे वहीं जमता जाता है। परिवार लाता या बसाता है और लगभग वहीं का होकर रह जाता है। केवल संकट में, बीमारी में या बुढ़ापे में ही घर लौटता है। मगर जब भी उनका कोई रिश्तेदार भारत से आता है या कोई विवाह आदि का विशेष अवसर होता है प्रवासी भारतीयों को अपना दायित्व निभाना ही पड़ता है। 'ननदरानी' ऐसी ही कहानी है जिसमें ननदरानी के विदेश आने पर भावज को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता है। अपने रिश्ते व अपनी शान को बनाए रखने के लिए ननदरानी को उपहार में कीमती सामान ऋण लेकर दिया जाता

है जिसकी बाद में भरपाई भावज के पिता को करनी पड़ती है।

"ननदरानी जा चुकी है। हम वापस शार्लेट आ पहुंचे हैं। ऋण की स्वीकृति अब भी नहीं मिली। बिल बहुत से आ पहुंचे हैं। मेरे पिताजी अमीर न होते हुए भी रिसोरफुल रहे हैं। कैसे भी इंतजाम करेंगे डालर का। यही दस्तूर रहा है न हमेशा से ससुराल में दो, पीहर से लो।"[7]

पीढ़ीगत अंर्तद्वंद से अभिप्राय है दो पीढ़ियों के बीच की दूरी जो जीवन–मूल्यों, संकल्पों, वैज्ञानिक प्राप्ति और सामाजिक यथार्थ के परिवर्तन के अनुरूप ढलने की भिन्नता के कारण उत्पन्न होती है। पहली पीढ़ी के विचार, मान्यताएं और प्राप्तियाँ दूसरी पीढ़ी से नहीं मिलतीं। पहली पीढ़ी बीते हुए समय और दूसरी पीढ़ी भविष्य से संबंध रखती है। यह अंतर परम्परा और प्रगति के बीच का है। जब प्रगति तीव्र होती है तो दोनों पीढ़ियों में तनाव बढ़ता है। प्रत्येक युग में, प्रत्येक समाज में और संस्कृति में पहली और दूसरी पीढ़ी के बीच अंतर अनिवार्य होता है। आधुनिक युग में प्रवासी भारतीयों के जीवन व उनकी भौतिक और सामाजिक परिस्थितियों में भारी परिवर्तन आया है। इनका कारण पश्चिमी समाज में विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति, आधुनिक तकनीकी विकास, यातायात के आधुनिक साधन, व्यवसाय, आर्थिक व्यवस्था का पुनर्गठन, औद्योगीकरण और समाज के नवीन वर्गों का प्रार्दुभाव, समाचार पत्र व राष्ट्रवाद का उग्र रूप आदि हैं। इन सब की लपेट से प्रवासी भारतीय अपने आपको अलग नहीं रख सका। इस बात का सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि नैतिक मूल्यों की टकराहट शुरू हो गई। हर व्यक्ति सुखमय जीवन व्यतीत करना चाहता है और इसके लिए वह हर तरह के जायज और नाजायज कार्य करता है। यही कारण है कि रिश्तों में भी बेगानापन बढ़ रहा है। नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है। पश्चिमी समाज के व्यस्त जीवन में स्वार्थपरता और व्यक्तिवाद का आधिपत्य हो चुका है। इन प्रवृत्तियों ने मानव को अंदर से नीरस और खोखला बना दिया है।

"अभिनंदन जैसे भारत में दो भारत बसते हैं, एक वे जो भारतीयता से सरोबार हैं और दूसरे वे जिन्हें अंग्रेज अपने पीछे छोड़ गए हैं उसी तरह यहां भी दो तरह के भारतीय हैं, एक वे जो भारत को अपने साथ लाए हैं और अपने बच्चों में संस्कृति और संस्कारों की शिडोरी बांट रहे हैं, दूसरे वे, जो भारत को पीछे छोड़ आए हैं और अमेरिकन बनने के चक्कर में अपना आपा भी खो चुके हैं। श्यामजी उन्हीं में से एक हैं। सपना के उच्छृंखल, उद्दंड स्वभाव और उसकी इस सोच के जिम्मेदार हम हैं। बच्चों को कौन सही रास्ता दिखाए। अगर मां–बाप ही रास्ता भटक जाएं। पतंग की डोर हमने तब खींचनी चाही, जब वह हाथ से छूट चुकी थी। सपना ने अमरीकी कल्चर को भी गलत तरीके से लिया। मुझे अफसोस है कि मैं सशक्त मां बन कुछ वर्ष पहले खड़ी होती, जो मैं आज हूं, तो सपना ऐसी न होती।"[8]

नई पीढ़ी अंग्रेजों के स्वतंत्र विचार अपना रही है। वैवाहिक और धार्मिक मूल्यों का उनके जीवन में कोई महत्त्व नहीं है। विवाह से संबंधित विचारों को लेकर दोनों पीढ़ियों में टकराव उत्पन्न होता है। वह परम्पराओं और रीति–रिवाजों में परिवर्तन करना चाहती हैं परन्तु पहली पीढ़ी इसके लिए तैयार नहीं होती। नई पीढ़ी बिना जाने परखे विवाह नहीं करना चाहती वे पहले शादी और बाद में प्यार पर विश्वास नहीं करते। उनकी नजर में पहले प्यार और फिर विवाह होना चाहिए। लड़का लड़की एक दूसरे को देखकर और बात करके ही शादी का फैसला करना चाहते हैं। चाहे लड़का माता–पिता द्वारा मिले चाहे खुद ढूंढ़ा हो। कई बच्चे तो अपने माता पिता के विवाह पर ही प्रश्न चिन्ह लगा देते हैं। जीवन साथी चाहे जितना भी अच्छा मिल रहा हो परन्तु जब तक वे एक दूसरे को मन से पसंद नहीं करते तब तक शादी के लिए हाँ नहीं करते। विदेशी समाज में बच्चे अकसर आधुनिकता के नाम पर गलत रास्ते पर चल पड़ते हैं। माता–पिता के लाख समझाने पर भी नहीं समझते। उनके मन में एक बात घर चुकी है कि वे ठीक और बुजुर्ग गलत है। माता–पिता की आजादी का वे गलत लाभ उठाते हैं। किन्तु जब यह आधुनिकता उन्हें ठोकर मारती है तो इन्हें अपनी गलती का एहसास होता है। सपना आधुनिकता के पीछे भाग रही थी और अब भागते–भागते थक चुकी थी। तनाव और निराशा ने उसे घेर लिया था। माता–पिता की बात सुनना और समझना नई पीढ़ी के स्वभाव में नहीं है। इसी कारण विवाह का फैसला अकसर ही वे गलत ले लेते हैं। असल में पहली पीढ़ी के पास उनके अपने भारतीय संस्कार और मूल्य हैं और विदेश में जन्मी दूसरी पीढ़ी के पास उनके अपने भारतीय संस्कार और मूल्य हैं और विदेश में जन्मी दूसरी पीढ़ी के पास विदेशी समाज का प्रभाव है। वे माता–पिता के विचारों को कोई महत्त्व नहीं देते। नई पीढ़ी के लिए पुरानी पीढ़ी की बात मानना जेल काटने के समान हैं। वह बुजुर्गों द्वारा दी आजादी का गलत फायदा उठाते हैं। जब नवयुवक पीढ़ी भारत में पलकर बड़ी होती है और बाद में विदेश पहुंचती है तो वहां का स्वतंत्र माहौल उन्हें स्वर्ग प्रतीत होता है। ऐसे खुले समाज में घर के बड़ों की नसीहतों की कोई अहमियत नहीं रह जाती। 'बीच की भटकन' कहानी में बेबी भारत से अपनी बहन के पास हॉलैंड की राजधानी हेग में रहने के लिए आती है। भारत के मध्यवर्गीय परिवार से आई बेबी विदेश के खुले समाज में कहीं खो जाती है। वह विदेशी रंग में ऐसा रंग जाती है कि वहीं की होकर रह जाती है। एक रात बेबी बारह बजे लौटी थी। वीना उसकी चिंता में जागती रही थी क्योंकि उसके मन में जवान लड़की को लेकर भय था पर बेबी तो पूरी तरह से विदेशी रंग में रंग चुकी थी। बेबी

ने तब भी विरोध करते हुए कहा था

"दीदी, भारत में रोक–टोक थी ही मम्मी पापा की टोका–टाकी हर बात में थी पर अब यहां भी तुम 'रूल्स–रेगुलेशन्स' बनाने लग गई हो–इतने बजे तक घर आना है, इससे नहीं मिलना, उससे नहीं मिलना 'मिनी' नहीं पहननी, 'स्ट्रेपलेस मैक्सीज' नहीं पहननी आखिर तुम क्या आशा करती हो मुझसे कि सारा दिन घर में बैठे झाड़ पोंछ करके या नीटिंग करके बिता दूं। मुझे इस तरह बोरियत होती है।"[9]

विदेश में दो पीढ़ियों की अपनी अपनी दुनिया है और ये दोनों कभी भी आपस में मिल नहीं सकतीं। इनका मिलना ऐसे है जैसे धरती आसमान का मिलना और ये कभी संभव हो ही नहीं सकता। विदेशी समाज में जन्मे बच्चे माता पिता से कोई संवाद नहीं करते। बच्चों ने अपनी एक अलग दुनिया बनाई हुई है और उसमें किसी का आना जाना पसंद नहीं करते। दोनों पीढ़ियाँ एक चुप्पी को धारण किए अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। पहली पीढ़ी ने विदेश में बहुत कठिन परिश्रम के बाद एक रुतबा हासिल किया है। इसलिए वे चाहते हैं कि उनके बच्चे इस रुतबे को कायम रखें। उनके बच्चे वहीं जन्मे और पले हैं जिस कारण वे उन सांस्कृतिक मूल्यों को अपना न सके जो उनके माता पिता में विद्यमान हैं। माता पिता की यही कोशिश रहती है कि वह उन्हें अपनी मातृभूमि से जोड़े रहें। इसके लिए या तो वे छुट्टियों में बच्चों को भारत ले जाना चाहते हैं या फिर उन्हें संभालने के लिए बुजुर्गों को बुलाते हैं। पश्चिमी समाज में प्रवासी भारतीयों ने भी एक समाज स्थापित किया हुआ है। इस समाज में वे अपनी प्रथाओं, रीति–रिवाजों एवं संस्थाओं को बचाकर रखना चाहते हैं ताकि इनके नैतिक मूल्य इनकी दूसरी पीढ़ी तक सही–सलामत पहुंच सकें।

उपसहांर विदेश में संस्कृति की भिन्नता के कारण प्रवासी भारतीयों को वहां तालमेल स्थापित करने में कठिनाई आती है। भारत में जैसी उनकी दिनचर्या थी उसी को वह विदेश में भी अपने जीवन का अंग बनाए रखना चाहते हैं। किन्तु धीरे–धीरे उनको आस–पास का वातावरण प्रभावित करने लग जाता है और उनकी जीवन–शैली में बदलाव आने लग जाते हैं। विदेशों में बच्चों को बचपन से ही आत्म निर्भर बनने की शिक्षा दी जाती है। मगर प्रवासी भारतीय अपने बच्चों को स्वतंत्रता नहीं देना चाहते। चाहे मजबूरी वश या परिवार के व समाज के दबाव के कारण भारतीय इतनी आसानी से वैवाहिक बंधनों से मुक्त नहीं हो पाते। भारतीय अभिभावक अपने बच्चों को सही रास्ते पर लाने के लिए मार–पीट भी करते हैं। किन्तु प्रवासी भारतीय ऐसा नहीं कर पाते क्योंकि पश्चिमी समाज में इसे कानूनन अपराध माना जाता है। विदेश में दो पीढ़ियों की अपनी अपनी दुनिया है और ये दोनों कभी भी आपस में मिल नहीं सकतीं। इनका मिलना ऐसे है जैसे धरती आसमान का मिलना और ये कभी संभव हो ही नहीं सकता।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1 तजेन्द्र शर्मा, देह की कीमत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.114
2 दिव्या माथुर, पंगा तथा अन्य कहानियां, मेघा बुक्स, नई दिल्ली, पृ.23
3 दिव्या माथुर, पंगा तथा अन्य कहानियां, मेघा बुक्स, नई दिल्ली, पृ.115
4 पूर्णिमा गुप्ता, मेरे अरमान, साहित्य वीथी प्रकाशन, दिल्ली, पृ.74
5 तजेन्द्र शर्मा, बेघर आखें, यश पब्लिकेशनस, दिल्ली, पृ.60
6 तजेन्द्र शर्मा, बेघर आखें, यश पब्लिकेशनस, दिल्ली, पृ.96
7 पूर्णिमा गुप्ता, उड़ान, साहित्य वीथी प्रकाशन, दिल्ली, पृ.59
8 सुधा ओम ढिंगड़ा, कमरा नंबर 103, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, पृ.53
9 सुषम बेदी, चिड़िया और चील, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.33